डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

पाठ्य सामग्री,

स्नातक हिन्दी प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष, द्वितीय पत्र के लिए।

दिनांक- 23.07.2020

व्याख्यान संख्या-20 (कुल सं. 56)

* सप्रसंग व्याख्या

मूल अवतरण:-

चित-बित बचत न, हरत हठि, लालन दृग बरजोर।

सावधान के बटपरा, ये जागत के चोर।।

प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'स्वर्ण-मंजूषा' से उद्धृत है। इसके रचयिता रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि बिहारी हैं, जिनकी रचना 'बिहारी सतसई' हिन्दी साहित्य में लोकप्रियता के क्षेत्र में रामचरितमानस के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक मानी जाती है।

प्रस्तुत दोहे का संदर्भ पूर्वानुरागिनी नायिका की आंतरिक स्थिति से

डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

है। प्रयत्न करने पर भी श्रीकृष्ण के प्रबल आकर्षण से बच नहीं पाने की भावना की काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत दोहे में दर्शनीय है।

नायिका सखी से कह रही है कि नायक अर्थात् श्रीकृष्ण के नेत्र इतनी जबरदस्त आकर्षण शक्ति से युक्त हैं कि हृदय रूपी धन बच नहीं पाता है, बल्कि वे हठपूर्वक छीन लेते हैं। वे नेत्र होशियार के लिए भी डाकू के समान हैं और जागते रहने पर भी अर्थात् दिनदहाड़े चोरी कर ले जाते हैं।

प्रस्तुत दोहे का भाव यह है कि श्रीकृष्ण की आँखों में आकर्षण का भाव इतना प्रबल है कि मन को नियंत्रण में रखने का लाख प्रयत्न करने पर भी नियंत्रण रह नहीं पाता और हृदय श्रीकृष्ण के वश में हो जाता है। जिस प्रकार डाकू दिनदहाड़े सबके जागते रहने पर भी डाका डाल देते हैं और धन चुराकर ले जाते हैं; उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आँखें भी हृदय रूपी धन चुरा कर ले जाती हैं।

प्रस्तुत दोहे में प्रयुक्त 'चित-बित' शब्द में 'चित' 'चित्त' का तद्भव है, जिसका स्पष्ट अर्थ हृदय है; और 'बित' 'वित्त' का तद्भव रूप है जिसका अर्थ धन है। 'बरजोर' का तात्पर्य बलशाली है तथा 'सावधान' का भाव सजग, सचेत, होशियार से है। 'बटपरा' रास्ते में लूट लेने वाले डाकू को कहते हैं। इसी का पर्यायवाची बटमार तथा राहजन है।

डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

प्रस्तुत दोहे में प्रतिबंधक के होते हुए भी कार्य हो जाने के कारण तृतीय विभावना अलंकार है।

*** सप्रसंग व्याख्या (2)**

उर लीने अति चटपटी, सुनी मुरली धुनि धाय।
हौं निकसी हुलसी सु तौ, गो हुल सी उर लाय।।

प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'स्वर्ण-मंजूषा' से उद्धृत है। इसके रचयिता रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि बिहारी हैं, जिनकी रचना 'बिहारी सतसई' हिन्दी साहित्य में लोकप्रियता के क्षेत्र में रामचरितमानस के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक मानी जाती है।

प्रस्तुत दोहा विप्रलब्धा नायिका के दुःख से संदर्भित है। विप्रलब्धा का शाब्दिक अर्थ है जो निराश की गयी हो, जिसे धोखा दिया गया हो अथवा जो वंचिता हो। नियत संकेत-स्थल पर नायक को न पाकर अपना अपमान समझने वाली नायिका विप्रलब्धा है। संकेत स्थल पर नायक से भेंट न हो पाने पर लौटकर नायिका अपना दुःख अपनी अंतरंगिनी सखी से कह रही है।

डॉ० बुद्धदेव प्रसाद सिंह
सहायक प्राचार्य(assist.Prof.),
हिन्दी विभाग,
डी.बी. कॉलेज जयनगर, मधुबनी (बिहार)
(ल०ना०मि०वि०वि०दरभंगा की अंगीभूत इकाई)

नायिका कहती है कि मुरली की धुन सुनकर हृदय में अत्यंत आतुरता लिए हुए मैं बड़े हुलास से अर्थात बड़ी उत्सुकतापूर्ण खुशी से उन्हें देखने के लिए घर से बाहर निकली; परंतु वह तो मेरे कलेजे में हूल अर्थात् मानो बर्छी भोंककर पहले ही चला गया था।

प्रस्तुत दोहे का तात्पर्य यह है कि नायिका नायक से करार की रहती है कि अमुक समय में मुरली बजाने पर वह निश्चित संकेत स्थल पर पहुँच जाएगी। अतः जब वह नायक को मुरली बजाते सुनती है तो इस आशा में खुशी से दौड़ पड़ती है कि उससे भेंट हो ही जाएगी। परंतु, उसके पहुंचने से पहले ही नायक वहाँ से जा चुका होता है। यह स्थिति नायिका को इतनी दुःखपूर्ण लगती है जैसे कि उसके हृदय में कटारी उतार दी गयी हो अथवा बर्छी भोंक दी गयी हो। वही दुःख वह अपनी सखी को बताती है।

प्रस्तुत दोहे में अभीष्ट के विरुद्ध अनिष्ट की प्राप्ति का वर्णन होने के कारण तृतीय विषम अलंकार है। इसके अतिरिक्त 'हुलसी' तथा 'हूल सी' में यमक अलंकार है।